ध्यान दें:

1

सुभाषित-1

प्रस्तावना

बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में सुभाषित का लक्षण इस प्रकार कहा गया है कि

पुराणेष्वितिहासेषु तथा रामायणादिषु।
वचनं सारभूतं यत् तत् सुभाषितमुच्यते॥

अर्थात् पुराणों में, इतिहास में, रामायण आदि महाकाव्यों में अखिल मनुष्य हित के लिए बार-बार कहा गया है कि सत्य को जहाँ सारभूत तत्व से कहा जाता है, वह सुभाषित कहलाता है। संस्कृत में उसी प्रकार की हजारों से अधिक सुभाषित हैं। अगर सुभाषितों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाए तो समस्त जीवन ही सुखमय होता है। उन्हीं सुभाषितों में से दस सुभाषित हम इस पाठ में दिए गए हैं। इस पाठ को पढ़ने से हम विद्या के महत्व को जानेंगे। एवं विद्या के महत्व को जानकर विद्या प्राप्त करने के प्रति हमारी प्रीति उत्पन्न होगी। इन सुभाषितों को पढ़ने से हम जीवन के वास्तविक रास्तों पर चल सकते हैं। सुभाषित में कहे गए रास्ते पर चलने से हमें अवश्य ही लाभ होगा। इस पाठ को पढ़ने से हमें अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- विद्या के महत्व को जान पाने में;
- धर्माचरण को किस प्रकार करना चाहिए इसे समझ पाने में;
- वाणी की महत्ता समझ पाने में;
- साहित्य आदि शास्त्रविहीन व्यक्ति की कैसी दशा होती है इसे समझ पाने में;
- श्लोक में स्थित पदों का अन्वय समझ पाने में;
- श्लोकों की व्याख्या कर पाने में।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

1.1 मूलपाठ

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥1॥

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यश:सुखकरी विद्या गुरूणां गुरु:।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहीन: पशु:॥2॥

अजराऽमरवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥3॥

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनात् धर्मं तत: सुखम्॥4॥

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पार्णिन तु कङ्कणेन।
विभाति काय: करुणापराणां
परोपकारै: र्न तु चन्दनेन॥5॥

वचो हि सत्यं परमं विभूषणं
लज्जाङ्गनाया: कृशता कटौ च।
द्विजस्य विद्यैव पुनस्तथा क्षमा
शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्॥6॥

केयुराणि न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा:।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥7॥

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुण:।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा॥8॥

साहित्यसङ्गीतकलाविहीन:
साक्षात्पशु: पुच्छविषाणहीन:।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भगधेयं परमं पशुनाम्॥9॥

यत्र विद्वज्जनों नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥10॥

1.2) मूल पाठ

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति॥1॥

सुभाषित-1

अन्वयः- वित्तस्य दानं भोगः नाशः तिस्त्रः गतयः भवन्ति। यो न ददाति, न भुङ्क्ते तस्य वित्तस्य तृतीया गतिः भवति।

अन्वयार्थः- धन की दान-प्रदान, भोग-उपभोग, नाश-विनाश तीन प्रकार की गतियाँ होती हैं। जो मनुष्य ना देता है अर्थात् दान नहीं करता है, न खाता है अर्थात् भोग नहीं करता है, उस मनुष्य के धन की तीसरी गति अर्थात् धन का नाश हो जाता है।

सरलार्थः- धन की दान भोग और नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ है। कोई मनुष्य यदि धन का दान नहीं करता और भोग भी नहीं करता है तब उसके धन का विनाश अवश्य होता है।

तात्पर्यार्थः- धन ही सभी मनुष्यों का इष्ट है। हमारे जगत में धन के बिना किसी कार्य की सिद्धि नहीं है। परन्तु उस धन की दान भोग और नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ हैं। अर्थात् धन का दान कर सकते है अथवा उसका भोग कर सकते है नहीं तो धन का नाश होगा। जिसके पास में अधिक धन है उस जैसा व्यक्ति यदि गरीबों की अथवा अन्य सुयोग्य पात्र के लिए वह धन नहीं देता है, और स्वयं भी यदि उसका भोग नहीं करता है, केवल संचय ही करता है तब कुछ दिनों के भीतर ही उसका विनाश अवश्य होता है। धन का तो अवश्य ही सभी को उपार्जन करना चाहिए। परन्तु यदि हमारे पास कमाया हुआ धन अधिक होता है तब अवश्य ही गरीबों को अथवा किसी शुभ कार्य के लिए उसका दान करना चाहिए। यदि किसी की दान करने की इच्छा नहीं है फिर उस धन का भोग करना चाहिए। जो दान भी नहीं करता, भोग भी नहीं करता उसके उपार्जित धन का अवश्य ही विनाश होता है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. भुङ्क्ते - भुज् धातु प्रथम पुरुष एकवचन

सन्धि युक्त शब्द

1. नाशस्तिस्त्रः - नाशः + तिस्त्रः।
2. तिस्त्रो गतयः - तिस्त्रः + गतयः।
3. गतिर्भवति - गतिः + भवति।

प्रयोग परिवर्तनः- धन का दान के द्वारा, भोग के द्वारा, नाश के द्वारा तीन गतियाँ होती हैं। जो न दान देता है, न भोग करता है उसके धन की तीसरी गति होती है।

छन्द परिचय- इस श्लोक में आर्या छन्द है।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः।
विद्या बन्धुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः॥2॥

अन्वयः- विद्या नाम नरस्य अधिकं रूपम्, प्रच्छन्नगुप्तं धनम्, विद्या भोगकरी, यशः सुखकरी, विद्या गुरूणां गुरुः। विद्या विदेशगमने बन्धुजनः, विद्या परा देवता, विद्या राजसु पूज्यते, धनं न तु पूजितम् अस्ति। विद्याविहीनः पशुः।

अन्वयार्थः- विद्या मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ सुन्दर रूप है। अन्दर स्थित छिपा हुआ धन है। विद्या भोग की उत्स स्वरूप है, यश और सुख की साधनभूत है। विद्या उपदेश करने वाले गुरुओं का भी गुरु है।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

विद्या विदेश गमन काल में बन्धुजन अर्थात् मित्र स्वरूप है। विद्या ही श्रेष्ठ देवता है। राजाओं द्वारा विद्या ही पूजी जाती है। धन नहीं। विद्या से हीन मनुष्य पशु समान है।

सरलार्थ:- विद्या ही मनुष्य का उत्तम सौन्दर्य होता है। यह मनुष्य का संचित धन है। भोग का उत्स स्वरूप है। यह यश और सुख के साधन में सहायक है। विद्या विद्वानों को भी उपदेश प्रदान करती है। विदेश गमन के समय विद्या ही मनुष्य की सहायता करती है। विद्या की अपेक्षा देवता श्रेष्ठ नहीं है। राजसभा जैसे उत्तम स्थान पर भी धन की पूजा नहीं होती है। परन्तु विद्या की तो सब जगह अवश्य ही पूजा होती है। इसलिए जिसके समीप विद्या नहीं है, वह पशु के समान ही है।

तात्पर्यार्थ:- विद्या तो सभी शास्त्रों में ही पूजित है। प्रस्तुत इस श्लोक में भी विद्या की ही स्तुति है। विद्या मनुष्य का श्रेष्ठ सौन्दर्य होता है। अर्थात् विद्यावान पुरुष स्वभाविक रूप से ही सुन्दर दिखाई देता है। सौन्दर्य के लिए उसकी वेशभूषा इत्यादि का प्रयोजन नहीं रहता। विद्या पुरुष का अन्त: स्थित छिपा हुआ धन है अर्थात् विद्यावान पुरुष दिखे तो उसके भीतर जो विद्या रूपी धन है उसे बाहर सभी नहीं देख सकते हैं, परन्तु उसकी महिमा है, कार्यकाल में वह धन ही मनुष्य का सहायक होता है। विद्वान मनुष्य जिसका भोग करने की इच्छा करता है, विद्या उस भोग के साधन में सहायक होती है। विद्या है तो मनुष्य का यश भी बढता है। वह मनुष्य सब जगह ही पूजित होता है। विद्या से विनय प्राप्त होता है, विनय से योग्यता प्राप्त होती है और योग्यता से धन की प्राप्ति होती है। और धन से सुख को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार से विद्या ही सब प्रकार के सुखों की साधनभूत है। महान विद्वान जो हैं वे भी इसी विद्या उपदेश को प्रदान करते हैं। अर्थात् विद्या ही सर्वोत्तम उपदेश देने वाली है। कोई मनुष्य जब अकेले विदेश जाता है, तब यह विद्या ही उसकी बन्धुस्वरूप होती है, कहीं उसके विदेशगमन का हेतु भी प्राय: यह विद्या ही होती है। विद्या के बल से वह विदेश में भी पूज्य स्थान को प्राप्त करता है। विद्या तो श्रेष्ठ देवता है। अत: हम सभी को ही विद्या देवी की पूजा करनी चाहिए। इसका हमें अभीष्ट लाभ अवश्य ही प्राप्त होगा। राजसभा जैसे महान स्थान पर धन की स्तुति नहीं होती, परन्तु विद्या और विद्यावान की स्तुति तो सब ही करते है। अत: धनलाभ की अपेक्षा विद्यालाभ के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, विद्या प्राप्त है तो फिर धनलाभ अवश्य ही होगा। लेकिन जो विद्या विहीन मूर्ख है, वह सब जगह ही निन्दित है। विद्या के अभाव में उनमें पशुता आती है। अत: विद्यालाभ अति आवश्यक है।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. प्रच्छन्नगुप्तम्- प्रच्छन्नं च तत् गुप्तं च प्रच्छन्नगुप्तम्, कर्मधारय समास
2. यश: सुखकरी- यश: च सुखं च यश:सुखे - द्वन्द्वसमास
3. विदेशगमने- षष्ठी तत्पुरुष
4. विद्याविहीन:- विद्यया विहीन: विद्याविहीन: - तृतीय तत्पुरुष समास

सन्धि युक्त शब्द

1. बन्धुजनों विदेशगमने - बन्धुजन: + विदेशगमने।

छन्द परिचय- इस श्लोक में शार्दूलविक्रीडितम् छन्द है।

अजरामवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥3॥

अन्वय:- प्राज्ञ: अजराऽमरवत् विद्याम् अर्थं च चिन्तयेत्। मृत्युना केशेषु गृहीत: इव, धर्मम् आचरेत्।

अन्वयार्थ:- समझदार मनुष्य को अजर अमर के समान बुढ़ापे व मृत्यु से रहित के समान विद्या शास्त्र-कलादि का ज्ञान को धन सम्पत्ति के उपार्जन के लिए सोचना चाहिए। मृत्यु ने केशों को खींचकर पकड़ा हो जैसे ऐसा धारण कर धर्म का, पुण्य का आचरण करना चाहिए।

सरलार्थ:- विद्वान व्यक्ति स्वयं को अजर अमर ऐसा मानकर विद्या और अर्थ का उपार्जन करता है, परन्तु मृत व्यक्ति के समान स्वयं को मानकर धर्म के अनुष्ठान को करता है।

तात्पर्यार्थ:- जो स्वभावत: ज्ञानी है, वे तो मैं वृद्धावस्था मृत्यु से रहित हूँ ऐसा सोचकर शास्त्रज्ञान का और विभिन्न कलादि के ज्ञान का उपार्जन करना चाहिए। अर्थात् इन ज्ञानों के उपार्जन में कोई शीघ्रता नहीं है। बाल्यकाल से आरम्भ करके मृत्युपर्यनत सम्पूर्ण जीवन धीरे धीरे विद्या और धन प्राप्त कर सकते है। परन्तु धर्म को अर्जित करने के विषय में तो यह शैली भिन्न ही है। हमेशा मृत्यु को प्राप्त हुआ स्वयं को मानकर धर्म को अर्जित करना चाहिए। अर्थात् सदैव बाल्यकाल से आरम्भ करके ही धर्म अर्जित का प्रयत्न करें। साधारण मनुष्य तो बड़े होने पर धर्म का अर्जन करेंगे ऐसा सोचकर युवावस्था में दुष्ट आचरण करते है। परन्तु मृत्यु कब हो जाएगी यह कोई भी बता नहीं सकता। अत: बाल्यावस्था से ही हमेशा धर्मार्जन का प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. अजराऽमरवत्- अजरश्चासौ अमरश्चेति अजरामर:- कर्मधारय समास
2. चिन्तयेत्- चिन्त धातु विधिलिङ् प्रथम पुरुष एकवचन
3. गृहीत:- ग्रह धातु क्त प्रत्यय पु.

सन्धि युक्त शब्द

1. प्राज्ञो विद्याम् - प्राज्ञ: + विद्याम्
2. गृहीत इव - गृहीत: + इव

छन्द परिचय:- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनात् धर्मं तत: सुखम्।।4।।

अन्वय:- विद्या विनयं ददाति, विनयात् पात्रतां याति, पात्रत्वात् धनम् आप्नोति, धनात् धर्मं आप्नोति, तत: सुखम् आप्नोति।

अन्वयार्थ:- विद्या विनय विनम्रता प्रदान करती है, विनय से, नम्रता से योग्यता आती है, योग्यता से दानादि समपर्ण योग्य सुवर्ण रजतादि धन प्राप्त करता है, धन से यज्ञ दानादि द्वारा धर्म पुण्य को प्राप्त करता है, फिर उस पुण्य से सुख को प्राप्त करता है।

सरलार्थ:- विद्या से विनय उत्पन्न होता है। जो विनयी होता है वह सत्पात्रता को प्राप्त करता है। योग्यता से व्यक्ति धन को प्राप्त करता है। धन के समुचित विनियोग से धर्म को प्राप्त करता है। धर्म से ही सुख प्राप्त होता है।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत इस श्लोक में विद्या का महत्व बताया गया है। कोई व्यक्ति जब विद्या प्राप्त करता है, तब उस विद्या के बल से वह स्वयं ही विनम्र होता है। वह विद्वान सभी का सम्मान करता है। ज्ञान में भी अहंकार प्रदर्शित नहीं करता है। और जो इस प्रकार विनम्र है, वह शीघ्र ही योग्यता को

ध्यान दें:

प्राप्त करते हैं, अर्थात् इस संसार में प्रतिष्ठा को प्राप्त करते है। सभी उस व्यक्ति के ऊपर विश्वास करते हैं। वह विनयी व्यक्ति हर जगह पूजित होता है। जो जगत में प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है वह बहुत धन को अर्जित करता है। वह विश्वास कार्य मे नियुक्त कार्य सम्पन्न करने से प्रसाद रूप में अधिक धन को प्राप्त करता है। और उस उपार्जित धन से वह यज्ञ दानादि कार्य करके पुण्य को अर्जित करता है। धन के बिना तो यज्ञादि रूप धर्म साधन कठिन ही होते है। अतः उसके लिए अवश्य ही धन का उपार्जन करना चाहिए। यज्ञ दानादि कर्मों से प्राप्त पुण्य से वह स्त्री, पुत्र, समृद्धि, प्रतिष्ठा, आरोग्यादि से युक्त हमेशा आनन्द से रहता है। इसलिए विद्या ही सभी प्रकार के सुख का साधन है ऐसा कह सकते है। विद्वान पुरुष तो इस दुःखी संसार में भी महान सुख का अनुभव करता है।

अन्य पक्ष से व्याख्याः- सुख का कारण धर्म (जिसमें जिम्मेदारियां भी शामिल हैं) ही है ऐसा सभी आस्तिक दर्शनों का सिद्वान्त है। धर्म पुण्य ही है। पुण्य अर्जन यज्ञ से, दान से, तप आचरण से ही अनुष्ठान होता है। धन प्राप्ति के लिए वृत्ति अथवा व्यापार उपाय है। जो योग्य है वह ही वृत्ति अथवा व्यापार करता है। और वह योग्यता विनय से उत्पन्न होती है। वृत्ति और व्यापार में नियोजित विनयी मनुष्य सब जगह सफल होता है। और विनय की प्राप्ति विद्या लाभ से होती है। एवम् यहाँ सुख के लाभ के लिए परम्परा सम्बन्ध है। व्यवहार में मनुष्य सुख की इच्छा करते हैं और दुःख के परिहार की इच्छा करते हैं। परन्तु सुख का कारण जो धर्म है उसके लाभ में श्रद्धा नहीं होती हैं। वहाँ कारण केवल अज्ञान है। धर्म सुख कार्य कारण भाव नहीं जानते हैं।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. ददाति-दा धातु लट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन
2. आप्नोति-आप् धातु लट् प्रथम पुरुष एकवचन

सन्धि युक्त शब्द

1. पात्रत्वात् धनम्-पात्रत्वात् + धनम्
2. धनाद्धर्मम् - धनात् + धर्मम्

छन्द परिचयः- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पार्णिन तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारैः र्न तु चन्दनेन॥5॥

अन्वय- श्रोत्रं श्रुतेन एव विभाति, कुण्डलेन न विभाति। पाणिः दानेन विभाति, कङ्कणेन तु न विभाति। करुणापराणां कायः परोपकारैः विभाति, चन्दनेन तु न विभाति।

अन्वयार्थः- कान वेद-शास्त्र इत्यादि के श्रवण से ही शोभित होते हैं, न कि कानों में कुण्डल धारण करने से। हाथ दान कर्म से सुशोभित होते हैं, न कि कंगन से। दयापरायण मनुष्य का शरीर परोपकार से सुशोभित होता है। चन्दन की गन्ध से नहीं।

सरलार्थः- विद्वानों के कान वेद शास्त्रादि के श्रवण से विभूषित होते हैं, न कि कुण्डल को धारण करने से। उनके हाथ दानादि सत्कर्मो से शोभित होते हैं, न कि कंगनादि आभूषण धारण करने से। जो करुणापरायण व्यक्ति हैं, उनके शरीर परोपकार से ही विभूषित होते हैं, न कि चन्दन के लेप से।

ध्यान दें:

तात्पर्यार्थः- इस श्लोक में महात्माओं विद्वानों में निहित गुणों के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। साधारण मनुष्य तो कानों के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कानों में कुण्डल धारण करते हैं, परन्तु जो सदैव वेद शास्त्रादि का श्रवण करते हैं उनके कान तो उससे ही सुशोभित होते हैं। वहाँ कुण्डल धारण करने का प्रयोजन नहीं है और साधारण मनुष्य हाथ का सौन्दर्य बढ़ाने के लिए हाथ में कंगन धारण करते हैं, परन्तु जो सदैव हाथ से दानादि सत्कर्मों को सिद्ध करते हैं, उसके हाथ उससे ही सुशोभित होते हैं। उसका कंगन धारण से प्रयोजन नहीं होता है। ऐसे ही दरिद्रों पर दयापरायण, कृपालु, परोपकार में रत मनुष्यों के शरीर की शोभा के लिए स्वयं चन्दनादि भूषित नहीं हैं, उनका शरीर तो परोपकार से ही शोभित है। अतः शरीर की शोभा के लिए आभूषणादि को छोड़कर हमें भी सदैव वेदशास्त्र को सुनने, दानादि सत्कर्मों को करने और सदैव परोपकार के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. करुणापराणाम्- करुणा परा येषां ते करुणापराः - बहुव्रीहिसमास।
2. परोपकारैः- परेषाम् उपकाराः परोपकाराः - षष्ठीतत्पुरुष समास।

सन्धि युक्त शब्द

1. श्रुतेनैव- श्रुतेन + एव।

छन्द परिचय- इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

वचो हि सत्यं परमं विभूषणं
लज्जाङ्गनायाः कृशता कटौ च।
द्विजस्य विद्यैव पुनस्तथा क्षमा
शीलं हि सर्वस्य नरस्य भूषणम्॥6॥

अन्वय- सत्यं वचः हि परमं विभूषणम्। अङ्गनायाः लज्जा कटौ च कृशता परमं विभूषणम्। द्विजस्य विद्या एव पुनः क्षमा तथा परमं विभूषणम्। सर्वस्य नरस्य शीलं हि भूषणम्।

अन्वयार्थः- वास्तव में सत्य वचन श्रेष्ठ विभूषण है। सुन्दर स्त्री का भूषण लज्जा और पतली कमर है। ब्राह्मणों का भूषण विद्या एवं क्षमा ही है। वास्तव में सभी मनुष्यों का अलंकार शील है।

सरलार्थः- सत्य वचन ही व्यक्ति का परम विभूषण है, लज्जा और कमर की क्षीणता ही नारी का श्रेष्ठ अलंकार है, विद्या और क्षमा ब्राह्मण का परम आभूषण है। और सत् चरित्र शील ही सभी मनुष्यों का उत्तम आभूषण होता है।

तात्पर्यार्थः- प्रस्तुत इस श्लोक में सत्य वचन सद्गुणों का माहात्म्य वर्णित है। सत्य वचन ही मनुष्य का अति उत्तम आभूषण होता है, अर्थात् जो सदैव सत्य बोलते हैं। वह सर्वत्र स्वयं ही शोभित और प्रशंसित है। अपनी शोभा को बढ़ाने के लिए उन्हें अन्य आभूषण का प्रयोजन नहीं होता है। विद्वानों की सभा में सत्य भाषण की बहुत प्रशंसा की जाती है। एवं लज्जा और कमर की क्षीणता वास्तव में नारी का श्रेष्ठ अलंकार है। लज्जाशील नारी की तो साहित्य में सदैव ही प्रशंसा की गई है। इसी प्रकार विद्या और क्षमा ब्राह्मण का परम आभूषण होता है। जिस ब्राह्मण के समीप विद्या और क्षमा है वह तो गुणियों की सभा में प्रशंसित होता है। समर्थों में क्षमा तो अनेक प्रकार से प्रशंसित है और इस प्रकार से ही सत्चरित्र सभी मनुष्यों का सबसे उत्तम आभूषण होता है। सत् चरित्रवान् पुरुष संसार में बिना प्रयास से प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अतः हमें भी हमारे चरित्रों में सत्त्व का उत्पादन करना चाहिए।

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

सन्धि युक्त शब्द

1. वचो हि – वच: + हि।
2. लज्जाङ्गनाया – लज्जा + अङ्नाया:।
3. विद्यैव – विद्या + एव
4. पुनस्तथा – पुन: + तथा।

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में वंशस्थ छन्द है।

केयूराणि न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालङ्कृता मूर्धजा:।
वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥7॥

अन्वय- केयूराणि न चन्द्रोज्जवला: हारा: न, स्नानं न, विलेपनं न, कुसुमं न, अलंकृता: मूर्धजा: न पुरुषं विभूषयन्ति। एका वाणी या संस्कृता धार्यते, सा पुरुषं समलङ्करोति। भूषणानि खलु क्षीयन्ते। वाग्भूषणं सततं भूषणम्।

अन्वयार्थ:- व्यक्ति को न बाजुबन्द, न ही चन्द्रमा के समान कान्ति वाला मोतियों का हार, न स्नान, न चन्दनादि का लेप, न पुष्प, न ही केशों को अलंकृत करना ही विभूषित करता है। एक अद्वितीय सुसंस्कृत वाणी ही पुरुष को अलंकृत करती है। आभूषण निश्चय ही क्षीणता को प्राप्त करते हैं। वाणी रूपी अलंकार सदैव भूषित होता है।

सरलार्थ:- भुजाओं के अलंकार धारण करने से, सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कान्तिविशिष्ट हारादि को धारण करने से, शरीर में चन्दनादि के लेप से, बालों में पुष्प धारण करने से कोई भी व्यक्ति भूषित नहीं होता है। सुसंस्कृत वाणी ही सबको भूषित करती है। वाणी रूपी आभूषण ही क्षय रहित आभूषण है।

तात्पर्यार्थ:- प्रस्तुत इस श्लोक में सुसंस्कृत वाणी का महत्व बताया गया है। साधारण व्यक्ति शरीर की शोभा को बढ़ाने के लिए अनेकों प्रकार के अलंकारों को धारण करते हैं, जैसे भुजाओं में बाजुबन्द को धारण करते हैं, गले में चन्द्रमा के जैसे कान्ति वाले हार को धारण करते हैं, और जल से भी स्नान करते हैं। चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन करते हैं। अनेक प्रकारों के आभूषणों से केशों को सजाते हैं। परन्तु ये सब प्रसाधनादि तो कुछ क्षण ही व्याप्त रहते हैं। फिर इन सब केयूरादि आभूषणों का नाश होता है इनके नाश से शरीर पुन: पहले जैसा अलंकारों से हीन असुन्दर होता है। परन्तु जिसके पास में सुसंस्कृत वाणी है, अर्थात् जो हमेशा आनन्द दायक मीठी वाणी बोलता है, उसको शरीर की शोभा को बढ़ाने के लिए अन्य अलंकारों का प्रयोजन नहीं होता है। वह सुसंस्कृत वाणी ही व्यक्ति का परम आभूषण है। और यह वाणी रूपी अंलकार नित्य ही है, अर्थात् इसका कभी भी नाश नहीं होता है। जिस व्यक्ति के समीप में यह अलंकार है वह सब जगह प्रशस्त होता है। हनुमान वाणी रूपी आभूषण से भूषित थे भगवान श्री राम से बहुत प्रशंसा को प्राप्त किया। इसलिए हमें वाणी को सुसंस्कृत और मधुर करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. विभूषयन्ति- वि+भूष् धातु, लट् लकार, प्रथम पुरुष बहुवचन
2. चन्द्रोज्जवला: – चन्द्र: इव उज्जवला:, कर्मधारय समास
3. अलंकृता- अलम्+ कृ धातु+ क्त प्रत्यय

ध्यान दें:

सन्धि युक्त शब्द

1. केयूराणि न – केयूरा: + णि
2. हारा न – हारा: + न
3. नालङ्कृता – न + अलङ्कृता

प्रयोग परिवर्तन– केयूरै: न, चन्द्रोज्ज्वलै: हारै: न, स्नानेन न, विलपनेन न, कुसुमेन न, अलंकृतै: मूर्धजै: न पुरुष: विभूष्यते। एकया वाण्या पुरुष: समलंक्रियते यां संस्कृतां धारयन्ति। भूषणानि खलु क्षीयन्ति। वाग्भूषणेन सततं भूषणेन भूयते।

छन्द परिचय– इस श्लोक में शार्दूलविक्रिडित छन्द है। व्यतिरेक अलंकार है।

नरस्याभरणं रूपं रूपस्याभरणं गुण:।
गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानस्याभरणं क्षमा।। 8।।

अन्वय– नरस्य रूपम् आभरणम् अस्ति, रूपस्य गुण: आभरणम् अस्ति।, गुणस्य ज्ञानम् आभरणम् अस्ति, एवं ज्ञानस्य आभरणम् भवति क्षमा।

अन्वयार्थ:– मनुष्य का आभूषण सौन्दर्य होता है, सौन्दर्य का आभूषण गुण होता है। और गुण का अलंकार बुद्धि होती है, उसी प्रकार बुद्धि का आभूषण क्षमा होती है।

सरलार्थ:– मनुष्यों का सौन्दर्य ही उनका अलंकार होता है। और उसके सौन्दर्य का अंलकार उनके गुण होते है। एवं उनके गुणों का अलंकार ज्ञान होता है। उसी प्रकार उसके ज्ञान का आभूषण क्षमा होती है।

तात्पर्यार्थ:– इस संसार में सौन्दर्य ही मनुष्यों का आभूषण होता है। जो स्वभाव से ही सुन्दर है, उन्हें शरीर की शोभा बढ़ाने के लिए अन्य अलंकारों का प्रयोजन नहीं होता है। इसलिए सौन्दर्य से व्यक्ति बढ़ता है। परन्तु अगर फूल गंधरहित होता है तो वह किसी को भी आनन्दित नहीं करता है। उसी प्रकार गुणों से रहित व्यक्ति का सौन्दर्य शोभा को प्राप्त नहीं करता है। अत: गुण ही रूप का आभूषण हैं। सुन्दर व्यक्ति गुणी होता है तभी उसकी शोभा बढ़ती है। एवं गुणवान मनुष्य को भी उसका ज्ञान मिलता है। ज्ञान को छोड़कर अनेक गुण भी हो फिर भी उस व्यक्ति की प्रशंसा नहीं होती है। इसलिए ज्ञान ही गुणों का आभूषण होता है। परन्तु हमारे संसार में ज्ञानियों में दर्प दिखाई देता है। ज्ञान में भी जो व्यक्ति विनम्र नहीं होता उसकी प्रशंसा नहीं होती है। इसलिए ज्ञान का आभूषण केवल क्षमा है। क्षमा रहती है तो ही ज्ञान शोभा को प्राप्त करता है। अन्यथा उस ज्ञान की भी निंदा होती है।

सन्धि युक्त शब्द

1. नरस्याभरणम् – नरस्य + आभरणम्
2. रूपस्याभरणम् – रूपस्य + आभरणम्
3. गुणस्याभरणम् – गुणस्य + आभरणम्
4. ज्ञानस्याभरणम् – ज्ञानस्य + आभरणम्

प्रयोग परिवर्तन– नरस्य रूपेण आभरणेन भूयते, रूपस्य गुणेन आभरणेन भूयते, गुणस्य ज्ञानेन आभरणेन भूयते, एवं ज्ञानस्य आभरणेन भूयते क्षमया।

ध्यान दें:

छन्द परिचय- इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमान-
स्तद्भगधेयं परमं पशुनाम्॥१॥

अन्वय- साहित्यसंगीतकलाविहीनः पुच्छविषाणहीनः साक्षात् पशुः एव। तृणं न खादन् अपि जीवमानः अस्ति इति यत् तत् पशुनाम् परमं भागधेयम्।

अन्वयार्थः- जिस व्यक्ति को साहित्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, कलाशास्त्र आदि का ज्ञान नहीं है। ऐसा व्यक्ति पूँछ और सींगों से हीन साक्षात् पशु ही है। तिनका न खाते हुए भी वह व्यक्ति जीवित है। यह उन पशुओं का उत्तम भाग्य है।

सरलार्थः- जिस पुरुष को साहित्यशास्त्र, संगीत और कला का कोई भी ज्ञान नहीं है। वह तो पूँछ और सींग से हीन साक्षात् पशु समान ही होता है। वह पशुरूप व्यक्ति मनुष्यरूप धारण कर पशु के समान तिनका नहीं खाता है, इसलिए पशु भोजन के लिए अधिक तिनके प्राप्त करते हैं। यह तो पशुओं का महान भाग्य ही है।

तात्पर्यार्थ- इस श्लोक के द्वारा साहित्य आदि शास्त्र ज्ञान से विहीन व्यक्ति की निंदा की गई है। इस संसार में मनुष्य मनुष्यरूप में आते हैं, फिर भी सब मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं करते। जगत में मनुष्य के वेश में बहुत से पशु भी हैं। उनके जन्म से संसार का कोई लाभ नहीं होता है। मांस पिण्ड के समान उनका जन्म व्यर्थ ही है। मनुष्यत्व के अर्जन के लिए साहित्य शास्त्रादि का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक होता है। हमारे जगत में चौंसठ कलाएँ हैं। अगर इन कलाओं का ज्ञान नहीं है तो वह व्यक्ति मनुष्यत्व को प्राप्त नहीं करता है। जिस व्यक्ति के पास इनका थोड़ा भी ज्ञान नहीं है, वह तो वास्तव में पशु समान ही होता है। केवल पूँछ सींगों से हीन वह मनुष्य वेशधारी पशु दूसरे पशुओं के जैसे तिनके को नहीं खाता है। इससे दूसरे पशुओं का बड़ा उपकार होता है। क्योंकि हमारे इस जगत में मनुष्य रूपधारी पशु अधिक हैं। वे सब मिलकर यदि तिनके को खाते हैं, तब तो बकरी आदि को भोजन के लिए तिनका नहीं बचेगा। इसीलिए मनुष्यत्व प्राप्ति के लिए हमें साहित्यादि के ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. साहित्य संगीतकला विहीनः-साहित्यं च संगीतं च कला च साहित्यसंगीतकलाः - इतरेतरद्वन्द्वसमासः।
2. पुच्छविषाणहीनः - पुच्छं च विषाणं च - इतरेतरद्वन्द्वसमासः।
3. खादन्- खाद् धातु पु., शतृ प्रत्यय, विभक्ति प्रथमा एकवचन
4. जीवमानः - जीव धातु शानच् प्रत्यय

सन्धि युक्त शब्द

1. खादन्नपि- खादन् + अपि
2. जीवमानस्तद्भागधेयम्- जीवमानः + तत् + भागधेयम्

प्रयोग परिवर्तन- साहित्य संगीतकला विहीनेन पुच्छविषाणहीनेन साक्षात् पशुना एव। तृणं न खादता अपि जीवमानेन भूयते इति यत् तत् पशूनां परमेण भागधेयेन भूयते।

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में उपजाति छन्द है।

यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते॥10॥

अन्वय- यत्र विद्वज्जन: नास्ति तत्र अल्पधी: अपि श्लाघ्य: भवति, निरस्तपादपे देशे एरण्ड: अपि द्रुमायते।

अन्वय अर्थ- जिस देश में पण्डित नहीं है, उस देश में मन्द बुद्धि भी प्रशंसनीय होते हैं। वृक्ष से रहित स्थल में एरण्ड नाम का छोटा कण्टक वृक्ष भी बृहद् वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

सरल अर्थ- जिस देश में कोई भी विद्वान पुरुष नहीं है, वहाँ तो मन्द बुद्धि व्यक्ति भी सभी के द्वारा प्रशंसनीय होता है। जैसे रेगिस्तान में कोई भी बृहद् वृक्ष नहीं है। इसलिए वहाँ विद्यमान कण्टक वृक्ष भी बड़े वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

तात्पर्य अर्थ- साम्प्रतिक समय में जगत में देखना चाहिए कि अयोग्य व्यक्ति भी बहुत ऊँचे आसनों पर स्थित है। क्योंकि उस आसन के योग्य व्यक्ति उस स्थान पर नहीं है। जिस प्रदेश में सभी व्यक्ति मूर्ख हो, कोई विद्वान व्यक्ति न हो, वहाँ कोई अल्पज्ञ हो वह प्रदेश के निवासियों में मूर्खों में महान प्रशंसनीय होता है। सभी उसके वचनों के अनुसार कार्य को सम्पादित करते हैं। जैसे रेगिस्तान में कण्टक वृक्ष को छोड़कर प्राय: अन्य वृक्ष विद्यमान नहीं हैं। इसलिए उस कण्टक वृक्ष को ही मरूप्रदेश के व्यक्ति बृहद् वृक्ष जैसा मानते हैं। परन्तु वह कण्टक वृक्ष पीपल आदि बड़े वृक्षों के स्थान पर आ जाए तभी उसके स्वरूप का प्रकाशन होता है। सभी के द्वारा वह वृक्ष निन्दित होता है। उसी प्रकार अपने प्रदेश में विद्वान जैसे पूजित मूर्ख स्वभाव से विद्वान व्यक्ति के समीप जाता है तब उसकी स्वाभाविक मूर्खता प्रकाशित होती है।

ध्यान दें:

व्याकरणात्मक टिप्पणी

1. विद्वज्जन: - विद्वान् च असौ जन: - कर्मधारय समास
2. अल्पधी: - अल्पा धी: यस्य स - बहुव्रीहि समास
3. निरस्तपादपे- निरस्ता: पादपा: यस्मिन् स निरस्तपादप: देश: बहुव्रीहि समास।
4. द्रुमायते- द्रुम: इव आचरति

सन्धि युक्त शब्द

1. विद्वज्जनों नास्ति- विद्वज्जन: + नास्ति।
2. नास्ति - न + अस्ति।
3. एरण्डोऽपि - एरण्ड: + अपि

प्रयोग परिवर्तन- यत्र विद्वज्जनेन न भूयते तत्र अल्पधिया अपि श्लाघ्येन भूयते, निरस्तपादपे देशे एरण्डेन अपि द्रुमाय्यते।

छन्द परिचय- प्रस्तुत इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

ध्यान दें:

1.1 पाठगत प्रश्न

1. वित्त की कितनी गति है? और वे कौन-सी है?
2. जो न देता है न भोग करता है उसकी कौन-सी गति होती है?
3. विद्या रूपी मनुष्य का क्या स्वरूप है?
4. विदेशगमन में कौन बन्धुजन है?
5. कौन पशु होता है?
6. अजर अमर जैसे विद्वान व्यक्ति को और क्या-क्या सोचना चाहिए?
7. कर्ण (कान) किससे विभूषित होते हैं?
8. करुणापरायण शरीर किससे विभूषित होता है?
9. अंगों का आभूषण क्या है?
10. पुरुष को क्या अलंकृत करता है?
11. कौन-सा आभूषण क्षीण नहीं होता?
12. ''केयूराणि न विभूषयन्ति'' इस श्लोक में क्या छन्द है?
13. मनुष्य का आभरण क्या है?
14. गुण का आभरण क्या है?
15. कौन पूँछ सींगों से हीन पशु है?
16. ''साहित्यसंगीत कलाविहीन:'' श्लोक में क्या छन्द है?
17. एरण्ड कहाँ बड़ा है?
18. (क.)- स्तम्भ के साथ (ख.)- स्तम्भ को मिलाओ-

(क.)- स्तम्भ	**(ख.)- स्तम्भ**
1. वितस्य गति:	(क.) बन्धुजन:
2. गुरुणां गुरु:	(ख.) पात्रत्वम्
3. विदेशगमने	(ग.) शीलम्
4. पशु:	(घ.) पाणि:
5. विनयात्	(ङ.) दानम्
6. दानेन	(च.) शार्दूलविक्रिडितम्
7. छन्द:	(छ.) विद्या
8. भूषणम्	(ज.) विद्याविहीन:
9. अल्पधी:	(झ.) आभरणम्
10. क्षमा	(ञ.) श्लाघ्य:

पाठ-1

सुभाषित-1

ध्यान दें:

पाठ सार

धन का दान, भोग, नाश ये तीन प्रकार की गतियाँ हैं। जो मनुष्य धनी होने पर भी दूसरे द्ररिद्र के लिए उसका दान नहीं करता है, और स्वयं भी उसका भोग नहीं करता है। उसके धन का तो अवश्य ही नाश होता है। केवल विद्या ही मनुष्य का उत्तम सौन्दर्य है, यह व्यक्ति का संचित धन है, भोग का उत्स स्वरूप यह यश और सुख के साधन में सहायक है। विद्या महान विद्वानों को भी उपदेश प्रदान करती है। विदेश जाने के समय में विद्या ही व्यक्ति की सहायता करती है। विद्या की अपेक्षा उत्तम देवता नहीं है। राजसभा जैसे उत्तम स्थान में भी धन की पूजा नहीं की जाती है, परन्तु सब जगह विद्या की पूजा तो अवश्य ही होती है। इसलिए जिसके पास में विद्या नहीं है, वह पशु के समान है। विद्वान व्यक्ति स्वयं को अजर अमर मानकर विद्या और अर्थ का उपार्जन करता है, परन्तु मरे हुए के समान स्वयं को मानकर धर्म के अनुष्ठान को करता है। विद्या से विनय उत्पन्न होता है, जो विनयी होता है वह योग्यता को प्राप्त करता है। योग्य व्यक्ति धन को प्राप्त करता है। और धन से सुख प्राप्त होता है। विद्वानों के कान वेद शास्त्रादि के सुनने से विभूषित होते हैं, न कि कुण्डल धारण करने से। उनके हाथ दानादि सत्कर्मों से ही विभूषित होते हैं न कि कंगनादि आभूषण धारण करने से। जो दानपरायण व्यक्ति हैं, उनके शरीर परोपकार से ही विभूषित होते हैं, न कि चन्दन के लेप से।

सत्य वचन ही मनुष्य का उत्तम आभूषण है लज्जा और कमर क्षीणता नारी का उत्तम अलंकार है। विद्या और क्षमा ब्राह्मण का उत्तम आभूषण है। और सत् चरित्रता ही सभी मनुष्य का उत्तम आभूषण होता है। हाथ के अलंकार धारण करने से, सौन्दर्य बढ़ाने के लिए कान्ति विशिष्ट हारादि अंलकारों के धारण करने से, शरीर पर चन्दनादि का लेपन करने से, केशों में फूल धारण से कोई भी व्यक्ति भूषित नहीं होता है। सुन्दर सुसंस्कृत वाणी ही सबको भूषित करती है। वाणी रूप आभूषण ही क्षीण न होने वाला आभूषण है। व्यक्तियों का सौन्दर्य ही उनका अंलकार होता है। और उनके सौन्दर्य के अलंकार उनके गुण होते हैं। एवं उन गुणों का अंलकार ज्ञान होता है। उसी प्रकार उसके ज्ञान का अलंकार क्षमा होती है। जिस व्यक्ति को साहित्य शास्त्र, संगीत विषयक और कला विषयक कोई भी ज्ञान नहीं है, वह तो पूँछ और सींग से रहित साक्षात् पशु के समान ही होता है। वह पशु समान व्यक्ति मनुष्यरूप धारण करने से पशु के समान तिनका नहीं खाता है, इसलिए पशु भोजन के लिए अधिक तिनके प्राप्त करते हैं। यह तो पशुओं का महान भाग्य ही है। जिस प्रदेश में कोई भी विद्वान व्यक्ति नहीं है, वहाँ तो मन्दबुद्धि व्यक्ति भी सबका प्रशंसनीय होता है। जैसे रेगिस्तान आदि में कोई भी बड़ा वृक्ष नहीं है, इसलिए वहाँ उपस्थित कण्टक वृक्ष भी बडे वृक्ष जैसे गणना किया जाता है।

आपने क्या सीखा

- धन का अधिक संचय नहीं करना चाहिए।
- सबको ही मनुष्यत्व प्राप्ति के लिए विद्या का प्रयत्न करना चाहिए।
- विद्या ही सब प्रकार के सुखों का साधन होती है।
- शील ही सभी मनुष्यों का स्वाभाविक आभूषण है।
- वाणी से भूषित व्यक्ति नित्य ही भूषित होता है।
- साहित्य, संगीत कला विहीन व्यक्ति तो साक्षात् पूँछ सींग से हीन पशु जैसा होता है।
- विद्वानों से रहित देश में मूर्ख भी सबका प्रशंसनीय होता है।

ध्यान दें:

पाठान्त प्रश्न

1. धन की तीन गतियों के विषय में संक्षेप से आलोचना करें।
2. विद्या के महत्व का श्लोक के अनुसार वर्णन करें।
3. श्रोत्रं श्रुतेनैव इस श्लोक की व्याख्या करें।
4. वाणी भूषण का महत्व यथा ग्रन्थ के जैसे प्रतिपादित करें।
5. साहित्य शास्त्रादि ज्ञान से विहीन की कैसी दशा होती है- उस विषय में संक्षेप से आलोचना करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. तीन गतियाँ। दान, भोग और नाश।
2. तृतीय।
3. अधिक श्रेष्ठ रूप और छिपा हुआ धन।
4. विद्या।
5. विद्या से हीन
6. विद्या और अर्थ
7. सुनने से
8. परोपकार से
9. लज्जा और पतली कमर
10. संस्कृत वाणी
11. वाणीरूपी आभूषण
12. शार्दूलविक्रिडित
13. रूप
14. ज्ञान
15. साहित्य संगीत कला से हीन
16. उपजाति
17. वृक्ष से रहित देश में
18. 1-ड, 2-छ, 3-क, 4-ज, 5-ख, 6-घ, 7-च, 8-ग, 9-ट, 10-ञ